# वेदों में रामकथा

## एक भ्रान्त एवं हास्यास्पद धारणा

डॉ. सुरेन्द्रकुमार

स्रोत

**वेद और विदेशी विद्वान् : कृतित्त्व और दृष्टिभेद**

सम्पादक : डॉ. धर्मवीर

1992

प्रकाशक

**परोपकारिणी सभा**

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर

# वेद और विदेशी विद्वान् : कृतित्त्व और दृष्टिभेद

ऋषिमेला १९९१ के अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ
एवं परोपकारिणी सभा के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित
वेद-गोष्ठी में पठित निबन्ध

—सम्पादक—
डा. धर्मवीर

—प्रकाशक—
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज
अजमेर

प्रथम संस्करण : १९९२

मूल्य : रु. ३५/-

# वेद और विदेशी विद्वान् : कृतित्व और दृष्टिभेद

## अनुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| वेद व विदेशी विद्वान् | III | डा. धर्मवीर |
| परोपकारिणी सभा : महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ | VI | — |
| अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ : एक परिचय | VII | धर्मवीर |
| वेद और विदेशी विद्वान् | १ | स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती |
| वेद में मांसभक्षण का कथन | ३ | डा. जगदेवसिंह |
| वेदश्रमी विदेशी विद्वान् | ८ | वेदप्रिय शास्त्री |
| जर्मन वैज्ञानिक प्रो. वाइज के विचार | १३ | डा. कृष्णपालसिंह |
| जूलियस् एकलिंग की दुरीक्षा | २२ | डा. वेदपाल सुनीथ |
| विदेशी विदुषां व्याख्यापद्धतेर्विवेचनम् | ३० | डा. ब्रह्मानन्द शर्मा |
| मैक्समूलर और उनका वैदिक अध्ययन | ३२ | प्रो. भवानीलाल भारतीय |
| विदेशी विद्वानों के आक्षेपों का निराकरण | ४० | रामस्वरूप |
| जानबूझकर वेदों के मिथ्यार्थ क्यों ? | ४२ | स्वामी विद्यानन्द |
| वेदों में रामकथा: एक भ्रान्त धारणा | ४६ | डा. सुरेन्द्रकुमार |
| वेद और मैक्समूलर | ५२ | वीरेन्द्र सरस्वती |
| भारतीय और विदेशी विद्वान् | ५६ | अनन्त शर्मा |
| वेद और विदेशी विद्वान् | ७० | धर्मसिंह कोठारी |
| वेद और विदेशी विद्वान् | ७३ | पीताम्बरलाल शर्मा |
| वैदिक वाङ्मय पर पाश्चात्यों का श्रम और हम | ७६ | सन्तोष 'कण्व' |
| अध्यक्षीय भाषण का सार | ८१ | वैद्य पं. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी |
| 'ट्रायड्ज़ इन द वेद' की समीक्षा | ८८ | डा. कृष्णलाल |

# वेद व विदेशी विद्वान्

भारतीय मनीषा के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में वेद का ज्ञान और वेद की भाषा मनुष्य को प्राप्त हुई। कालान्तर से इस में विभेद होता गया। इस विभेद का कारण देशगत एवं कालगत दूरी रही जिस का आज भी अनुभव किया जा सकता है। पाश्चात्य कथानक में भाषा विभेद ईश्वर ने किया है जब कि भारतीय अनुसन्धान भाषा भेद को मनुष्यकृत मानता है। भाषा गत दूरी से समाज में वैचारिक और सांस्कृतिक दूरियों का जन्म हुआ है। इस भाषागत दूरी के मूल में जाने का यत्न किया गया तो विद्वानों को भाषाओं में परस्पर समानता का बोध हुआ जिससे यह प्रतीति होना स्वाभाविक है कि इन प्रचलित भाषाओं का मूल कहीं एक है और प्राचीनतम है। वर्तमान में वेद की भाषा प्राचीनतम है। अतः उससे भाषाओं में समानता प्रतीत हो यह स्वाभाविक है। इसी जिज्ञासा ने वेद के अध्ययन के लिये विद्वानों को प्रेरित किया। यह संयोग है अध्ययनकर्त्ताओ में अनेक विद्वान सत्तापक्ष से सम्बद्ध थे और उनका दृष्टिकोण भी सत्तासमर्थक रहा है पुनरपि सभी विद्वानों के साथ यह बात नहीं घटती? सरस्वती का समाराधन प्रज्ञा का प्राकृतिक व्यापार है अतः यह देश काल जाति आदि के बन्धनों की परवाह नहीं करता। इस प्रकार के उपासकों ने जो अध्ययन प्रस्तुत किया है उसका मूल्यांकन करते हुए एतत् सम्बन्धी पक्षपात एवं पूर्वाग्रह से मुक्त रहना चाहिए। इस प्रस्तुत प्रयास में मान्य लेखकों ने इसका निर्वहण करने का यत्न किया है तथा जहां पाश्चात्य विद्वानों पर दुराग्रह एवं पक्षपात का आरोप लगाया है उसके पक्ष में प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं।

आर्ष सिद्धान्त और मान्यताओं के विरोध के लिये पाश्चात्य विद्वान् अकेले दोषी नहीं हैं, इसके लिये मध्यकाल के वेद के भाष्यकार एव कर्मकाण्ड के विद्वान् मुख्यतः दोषी हैं जिन्होने वेद को इच्छानुसार मोड़ने का प्रयत्न किया है। यदि पाश्चत्य लोग इसे प्रमाण मानकर अपने विचार को पुष्ट करने का यत्न करते हैं तो उन्हें यह अधिकार हमारे द्वारा प्राप्त है। मध्यकाल के सारे कथन आर्ष सिद्धान्त की कसौटी पर निराकृत हो जाते हैं यदि हम वेद को एक वाक्यता गुण से युक्त मानते हैं। वेद के विषय में जितना अध्ययन हुआ है और हो रहा है उसमें नाना प्रकार की चर्चाओं को दिखाने का यत्न किया जाता है परन्तु इस चर्चा में परस्पर विरोध प्रतिपादित होता है तो सारी चर्चा ही निरर्थक हो जाती है। यदि वेद बुद्धिपूर्वा वाक्यकृति है तो एक मनुष्य के कथन में विविधतागत अनेकता हो सकती है परन्तु विरोधजन्य भिन्नता स्वीकार्य नहीं हो सकती। उदाहरण के लिये वेद मांस खाने का विधान है या नहीं? यदि दोनों कथन उपलब्ध होते हैं तो ये कथन अप्रमाण होने से अमान्य हो जायेंगे। इन दोनों वातों में इन्द्रिय आकर्षण, लोलुपता से मांसाहार गृहीत हो सकता है परन्तु विचार से मांसाहार का पक्ष हेय होने से निराकृत हो जाता है। अतः यह कहना वेद में दोनों कथन मिलते हैं यह विचार मूर्खतापूर्ण सिद्ध होता है?

वेद का व्याख्यान करते हुए दो तरह के प्रमाण और प्रस्तुत किये जाते हैं एक ऐतिहासिक और मनुष्य की रुचि एवं व्यवहार के उदाहरण। ये दोनों पक्ष प्रस्तुत करते हुए जो बात कहते हैं वह ठीक लगने पर भी सर्वथा सत्य नहीं होती। विचार किया जाय तो आज के युग को विकसित कहेंगे या अविकसित, सभ्य अथवा असभ्य। कहने को सभ्य कहेंगे क्योंकि प्रगति का अगला छोर जहां पहुच गया है वह इस युग उपलब्धिका सूचक है परन्तु असभ्यता का साम्राज्य उस धरती पर आज भी विद्यमान है इससे कौन इन्कार कर सकता है। ग्रह उपग्रहों में जाने वाले यानों का अस्तित्व है परन्तु बैलगाडी या भैंसागाडी का; मनुष्यों द्वारा खींची जाने वाली गाडी का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ है। यदि विचार करके आने वाले समय

के परिप्रेक्ष्य में इसका मूल्यांकन करें तो बैलगाडी के उदाहरण से अविकसित कहेंगे अथवा उपग्रह के कारण विकसित। स्थान भेद से, परम्परा, इच्छा, आवश्यकता सामर्थ्य ऐसे बहुत सारे बिन्दु हो सकते हैं जिनसे विभेद संभव है तब कहना पड़ेगा यदि उपग्रह विकास का मानदण्ड है तो यह युग विकसित है। यही दृष्टि पुरातन काल के विवेचन में रखनी होगी। अत: विकास के चरम को प्रस्तुत करते हुए परिणाम का आकलन निम्न कोटि के उदाहरणों से नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार कुछ लोग यह कहकर वैदिक सभ्यता का मूल्यांकन करते हैं वेद में जुए और चोरी का उल्लेख है अत: सभ्य समाज से दूर है। ऐसा कथन अनर्गल प्रलाप है। संसार में सदा ही सब कुछ रहा है, बीज सड़ता भी है उगता भी है। मनुष्य की भावना अच्छी और बुरी अपेक्षा से हैं। समाज में बुद्धि के अनुसार कार्य होता है, तब उचित होता है और जब आवेग व भावना से होता है तब अनुचित। मनुष्य सदा ही समस्त संवेगों के साथ ही रहेगा। उसके अच्छा या बुरा होने का आकलन उसके बौद्धिक विवेचन और प्रस्तुत कार्य से होगा न कि भावनाओं के अस्तित्व से। यदि चोरी न करने का उपदेश है तो चोरी का अस्तित्व भी है। अत: ये विचार वेद के काल और समाज के चित्रण के लिये पर्याप्त आधार नहीं हैं। यह चित्रण सदा सर्वत्र सम्भव हैं इसलिये वेद के विचार को देशकाल की सीमा से बांधना अनुचित है। फिर वेद में सगोत्र विवाह, व्यभिचार, भ्रूण हत्या का उल्लेख है अत: वेद कब का है यह सिद्ध करना तब सम्भव होगा जब यह सब इस समाज में यह बिल्कुल भी नहीं रहा होगा और ऐसा समय इस धरा पर न कभी था न होगा।

इस प्रकार वेद का अध्ययन करते हुए औचित्य पूर्ण दृष्टि रखनी होगी तभी समाज के लिए लाभकर विचार दिये जा सकते हैं।

जिस प्रकार सप्तसिन्धु सूक्त की व्याख्या करते हुए पाश्चात्य और उनके अनुयायी विद्वानों ने सिन्धु शब्द देखकर कल्पना कर डाली वेद की ऋचायें सिन्धु नदी का वर्णन करती हैं। गंगा का वर्णन करती हैं, यमुना का वर्णन करती हैं, इस आधार पर अपने निष्कर्ष भी प्रस्तुत कर दिये आर्य या वैदिक लोग सिन्धु से गंगा तक पहुंचे। इस विचार में भारत आने की दिशा पश्चिम से पूर्व तथा स्थान के विवरण की दिशा पूर्व से पश्चिम इस समस्या का समाधान करने का उन्हें अवकाश नहीं मिला।

किसी बात की प्रामाणिकता अन्त: साक्षी और बाह्य प्रमाणों पर निर्भर करती है। पाश्चात्य विद्वान् दूसरे मन्त्रों से अपने निर्णयों को पुष्ट करने में असमर्थ रहे हैं। बाह्य प्रमाण वेदाधारित ग्रन्थों एवं परम्पराओं पर निर्भर करते हैं, इन दोनों से पाश्चात्य विद्वानों का परिचय कम हो यह स्वाभाविक है। जब यहाँ की परम्परा इस देश में ही उपलब्ध नहीं रही तो बाहर के व्यक्ति से उसके परिचय की अपेक्षा नहीं की जा सकती परन्तु निष्कर्ष उसके बिना स्वीकार्य भी नहीं हो सकते। कल्पना और बुद्धि को छूट देने पर मन्त्रों का अर्थ अच्छे से अच्छा और बुरे से बुरा किया जा सकता है परन्तु उससे वेद के होने का अर्थ शेष नहीं रह सकेगा। वेद बना इस धरती के लोगों के लिए, मिला इन लोगों को, उससे उन्होंने जो लाभ उठाया वही वेद का वेदत्व है। उसको पकड़ पाना ही अनुसन्धान है। लक्ष्य से हट कर किया गया अनुसन्धान वेद के स्वरूप का प्रकाशक नहीं हो सकता अत: प्रसंग व परम्परा को ध्यान में रख कर समग्र दृष्टि से अवलोकन करना अपेक्षित है तब निश्चय ही वेद का प्रकाश हमारी आत्मा को आलोकित कर सकता है। इसी अवधारणा को धारण करके विद्वानों ने यहाँ विचार प्रस्तुत किये हैं।

## पुरस्कृत निबन्ध

गत वर्ष की वेदगोष्ठी के निबन्ध 'वेद और विदेशी विद्वान्' शीर्षक से पढ़े जाकर प्रकाशित हुए। गत वर्ष निश्चय किया गया था उत्कृष्ट निबन्धों को पुरस्कृत किया जाए जिससे अच्छे लेखन को प्रोत्साहन मिले, विशेषकर नई पीढ़ी के लेखक अपने परिश्रम को शास्त्रीय दिशा दे सकें। इस कार्य के मूल्यांकन के लिए निबन्ध डॉ. रामनाथजी वेदालंकार हरिद्वार, श्री पं. मनोहरजी

विद्यालंकार दिल्ली, तथा श्री पं. राजवीरजी शास्त्री सम्पादक दयानन्द सन्देश दिल्ली को भेजे गये और उन्होने परीक्षण कर सभी निबन्धों की प्रशंसा करते हुए अपनी दृष्टि से श्रेष्ठ निबन्धों का चयन किया। यह बात निबन्धों की उत्कृष्टता का प्रमाण ही कही जायेगी कि अधिकांश निर्णय परस्पर भिन्न रहे और सभा ने यह उचित समझा जितने भी निबन्ध पुरस्कार की कोटि में आते हैं सभी को पुरस्कृत किया जाय।

पुरस्कार की कुल राशि एक हजार रुपये थी परन्तु दयानन्द वेदपीठ के मन्त्री श्री सत्यानन्दजी आर्य ने यह राशि प्रथम पुरस्कार के रूप में प्रत्येक को २५१ रु. द्वितीय २०१ रु. तथा तृतीय को १५१ रु. देने की घोषणा की। इन निबन्धों का वरीयताक्रम मान्य विद्वानों की दृष्टि में इस प्रकार रहा—

**प्रथम—**

१. वैदिक वाङ्मय पर पाश्चात्यों का श्रम और हम —**श्री सन्तोष 'कण्व'**

२. प्रो. मैक्समूलर और उनका वैदिक अध्ययन —**डॉ. भवानीलाल भारतीय**

३. वेद के युग युगीन प्रणाश तथा उद्धार के चक्रनेमि क्रम में वर्तमान भारतीय व विदेशी विद्वान् —**श्री अनन्त शर्मा**

**द्वितीय—**

१. वेद और विदेशी ईसाई मैक्समूलर —**श्री वीरेन्द्र मुनि**

२. शतपथ ब्राह्मण के अनुवाद का जूलियस एगलिंग की दुरीक्षा —**डॉ. वेदपाल सुनीथ**

३. जर्मन वैज्ञानिक प्रो. जी. वाइज तथा महर्षि दयानन्द का विचार विमर्श —**डॉ. कृष्णपालसिंह**

४. वेदों में राम कथा : एक भ्रान्त एवं हास्यास्पद धारणा —**डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

**तृतीय—**

१. जान बूझकर मिथ्यार्थ क्यों —**स्वामी विद्यानन्द सरस्वती**

विद्वानों ने सभी लेखों को उपयोगी व ज्ञानवर्धक बताते हुए सभी विदेशी विद्वानों की धारणा पूर्वाग्रह से प्रेरित नहीं अतः सभी विद्वानों के लिए आदरसूचक शब्दों का प्रयोग लेखकों को करना चाहिए—ऐसा मत प्रकाशित किया है। विशेष रूप से डॉ. रामनाथ वेदालंकार की टिप्पणी उल्लेखनीय और प्रेरणादायक है—

'विगत वेदगोष्ठी के आप द्वारा प्रेषित शोधपत्रों को मैंने ध्यान से पढ़ा है, शोध पत्र परिश्रमपूर्वक लिखे गये हैं। लेखकों ने शोध गोष्ठी को सफल बनाया एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

लेख क्योंकि छात्रों के न होकर विद्वानों के हैं, इसलिए उन पर पृथक्-पृथक् टिप्पणी करना उचित नहीं होगा, इतना अवश्य कहना है कि आर्यसमाज के शिखरासीन विद्वान् यदि यह मानते हैं कि मैक्समूलर, जूलियस एगलिंग प्रभृति विदेशी विद्वानों ने वैदिक साहित्य सम्बन्धी कार्य इस हेतु से किया कि वैदिक धर्म की निकृष्टता एवं ईसाई धर्म की उत्कृष्टता सिद्ध हो सके तथा इसे पढ़कर भारतीय लोग ईसाई बनें, तो यह चिन्ताजनक स्थिति है। स्वयं विदेशी विद्वानों ने तो अपने पत्रों या ग्रन्थों में यह इसलिए लिखा है कि उनके कार्य का ईसाइयों की दृष्टि में औचित्य सिद्ध हो तथा उन्हें सम्मान, आर्थिक सहायता, प्रकाशन आदि प्राप्त होता रहे। इस विषय में आप द्वारा भेजे गये लेखों में प्रथम आशीर्वादात्मक लेख हमारा अच्छा मार्गदर्शन करता है। अतः व्यक्तिगत आक्षेप न करके हमें उन मान्यताओं पर सप्रमाण विचार करना चाहिए जो असंगत हों। उनके कार्य का मूल्यांकन करते हुए उनकी असावधानियों, त्रुटियों, भ्रान्त कल्पनाओं एवं अशुद्ध व्याख्यानों पर ही हमें प्रहार करना चाहिए।'

इस प्रकार इस वेदगोष्ठी को सफलता और जो मार्गदर्शन मान्य समालोचकों का मिला उसके लिए हम श्रद्धावनत हैं और जिन विद्वानों के परिश्रम ने यज्ञ के लिए जो अपनी निष्ठा व योग्यतापूर्ण हवि प्रदान की उसके लिए हम उनके आभारी हैं। हमें विश्वास है उनके इस पवित्र स्नेह पर हमारा अधिकार बना रहेगा।

**—धर्मवीर**

# वेदों में रामकथा : एक भ्रान्त एवं हास्यास्पद धारणा

□ डा० सुरेन्द्रकुमार

मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि किसी भी भावना के अतिरेक से अभिभूत व्यक्ति उस असामान्य स्थिति में पहुंच जाता है, जो उसके लिए कभी-कभी अत्यधिक अहितकर और हास्यास्पद सिद्ध होती है। उस स्थिति में उसकी विवेकचेतना क्षीण और तर्कशक्ति कुण्ठित हो जाती है। इसी प्रकार श्रद्धा की विवेकहीन अतिशयता भी व्यक्ति को अन्धश्रद्धा की इसी स्थिति में लाकर खड़ा कर देती है।

इसे अन्धश्रद्धा का परिणाम कहें अथवा अविवेक का, मतिविभ्रम का अथवा सोचे-समझे दुराग्रह का, कुछ वैसी ही असामान्य स्थिति उन व्यक्तियों की है, जो वेदों में रामकथा का अस्तित्व स्वीकार करते हैं या इस मत के प्रतिपादकों का आँख मूंद कर समर्थन करते हैं।

प्राचीन काल से लेकर आज तक के भारतीय एवं विदेशीय भाष्यकारों की लम्बी सूची में एक भी भाष्यकार ऐसा नहीं हुआ है, जिसने वेदमन्त्रों में रामकथा का अस्तित्व स्वीकार किया हो, अथवा किसी मन्त्र का रामकथापरक भाष्य किया हो। वेदों की व्याख्या के निमित्त निर्मित वैदिक ग्रन्थों में भी कहीं इस बात का संकेत नहीं है; किन्तु फिर भी कुछ लोगों ने 'वेदों में रामकथा' होने की मान्यता स्थापित करने का तथाकथित शोध किया है। आज भी कुछ व्यक्ति इस तथाकथित शोध का चमत्कार प्रदर्शित करते रहते हैं। पता नहीं वे व्यक्ति इस तथ्य को क्यों नहीं सोचते-समझते कि वे ऐसा करके वेदों, वेदमंत्रार्थों तथा रामकथा की हास्यास्पद स्थिति का प्रदर्शन कर रहे हैं।

मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों ने कदाचित् यह कल्पना भी न की होगी कि कोई व्यक्ति इस सीमा तक मन्त्रार्थों को विकृत कर सकता है, किन्तु उन्होंने यह अवश्य सोचा था कि मन्त्रार्थ करते समय स्वेच्छाचारिता, अव्यवस्था, नियमहीनता की प्रवृत्ति उत्पन्न न हो; इसलिए उन्होंने मन्त्रार्थप्रक्रियाओं का निर्धारण-नियमन किया और इस प्रक्रिया में देवता, प्रकरण, स्वर, पदपाठ, इत्यादि का महत्त्व प्रतिपादित किया। इसी उद्देश्य से वेदों के व्याख्यारूप वेदांग-ग्रन्थों कि रचना की। महर्षि यास्क ने निरुक्तशास्त्र में मन्त्रार्थों और मन्त्रार्थपद्धति के सम्बन्ध में पर्याप्त ऊहा-अपोह करके यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि वेदमन्त्रों की व्याख्या प्रकरण और देवता के अनुसार ही करनी चाहिये। इन्हीं के आधार पर मन्त्र का यथार्थ जाना जा सकता है। किन्तु, रामकथा-अन्वेषकों को इन नियमों से कुछ लेना-देना नहीं। वे इन सब नियमों को ताक पर रखकर प्राचीन व्याख्याग्रन्थों में प्रस्तुत और प्राचीन-अर्वाचीन भाष्यकारों द्वारा प्रतिपादित अर्थों की घोर उपेक्षा करते हुए नितान्त स्वेच्छाचारिता का प्रदर्शन करते हैं। यद्यपि चारों वेदों में सम्पूर्ण सूक्त तो क्या, एक मन्त्र भी ऐसा नहीं हैं, जिसमें रामकथा वर्णित हो; तथापि इन लोगों को जहां कहीं, जिस मन्त्र में, रामकथा से मिलता-जुलता कोई शब्द मिल जाता है, उसी मन्त्र को वे रामकथा का वर्णक घोषित कर देते हैं। किसी मन्त्र में उन्हें केवल एक शब्द मिल जाना चाहिये, बस फिर क्या है, उस सम्पूर्ण मन्त्र की रामायण ही बना डालते हैं। और फिर उस शब्द के साथ मन्त्र के शेष पदों की संगति लगाने के लिए व्याख्या की जो कसरत करते हैं तथा अध्याहार की आड़ में जो अद्भुत कल्पनाएं करते हैं, उसे पढ़कर तो सामान्य संस्कृतवेत्ता को भी हंसी आने लगती है। उदाहरण के रूप में अथर्ववेद का एक मन्त्र प्रस्तुत है—

**नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।**
**इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ।।**

[अथर्व० १.२३.१]

रामकथा-पक्षधरों द्वारा प्रस्तुत इस मन्त्र की व्याख्या निम्न प्रकार है—

"(१) 'ओष' अथवा 'दोष' शब्द उपपद रखकर 'धेट्' धातु से कर्म में 'कि' प्रत्यय होकर 'ओषधि' शब्द बनता है। 'ओष' का अर्थ है— 'दाह'। 'दाह' शब्द से सांसारिक त्रिविधतापों का ग्रहण है। 'ओषधयति'=जो त्रिविध ताप का पान कर जाये अर्थात् नाश कर दे, उसका नाम 'ओषधि' है। 'दोष' शब्द उपपद रखकर बनाना हो तो दकार का लोप कर देना होगा। तब इस अर्थ में 'दोषं धयति' यह व्युत्पत्ति होगी।

(२) 'नक्तंजातास्य' एक पद है। 'नक्तंजात' चन्द्रमा का नाम है। आस्य का अर्थ मुख होता है। चन्द्रमा के समान जिसका मुख हो, उसे 'नक्तंजातास्य' कहते हैं। 'ओषधि' के साथ इसका कर्मधारय समास है।

(३) 'किलास' में दो शब्द हैं—किल+आस। क्रीडनार्थक किल् धातु से 'किल' शब्द बना है 'किलम् अस्यतीति किलासम्।' जो क्रीडा को दूर कर दे, उसे 'किलास' कहते हैं।

(४) 'पलित' का अर्थ है— 'सफेद केश'। 'पलित' शब्द से तद्धित 'अच्' प्रत्यय करने से 'पलित' का श्वेतकेशवाला अर्थ हो जाता है।

(५) 'रजनी' शब्द का अर्थ पति का रञ्जन करने वाली स्त्री है। अथवा 'रकारार्थो रामः'— इस वचन के अनुसार 'र' का अर्थ राम है। 'जनि' का अर्थ जन्म है। राम का जन्म जिससे हुआ उसका नाम 'रजनी' है। 'ई' स्त्रीप्रत्यय है। यहां कौसल्या जी से तात्पर्य है। यह सम्बोधन का रूप है।

(६) 'असिक्नि' का अर्थ है—जिस स्त्री के केश सफेद न हुए हों। केशश्वैत्य मृत्यु का परिचायक हैं। अतः यहां पर 'असिक्नि' कहने का तात्पर्य है कि जिसकी मृत्यु अभी बहुत दूर है। यहां भी तात्पर्य कौसल्या जी से ही है।

इस प्रकार शब्दार्थ समझ लेने के बाद मन्त्रार्थ बहुत सुगम हो जाता है। मन्त्रार्थ है—**'नक्तंजातास्योषधे'**=हे चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तथा भगवद्दर्शन से त्रिताप को नाश करने वाली अथवा सर्वदोष का नाश करने वाली! 'असिक्नि' =हे मृत्यु से दूर रहने वाली चिरजीविनी! 'रजनि'=हे स्वपति महाराज दशरथ का अनुरंजन करने वाली कौसल्या जी! 'इदम्'=इन, 'किलासम्'=क्रीडा को फेंक देने वाले, क्रीडाविरक्त, 'यत् च'=और जो, 'पलितम्'=सफेद केश वाले हैं, उन दशरथ जी को, 'कृष्णे'=श्याम वर्णवाले, 'रामे'=अपने पुत्र भगवान् श्रीराम में, 'रञ्जय'= आसक्त बना दो। अथवा रामे, कृष्णे 'सति सप्तमी' के रूप हैं। 'जाते' का अध्याहार करना है। श्यामस्वरूप भगवान् राम के प्रकट होने पर वृद्ध दशरथ जी को आप प्रसन्न कीजिये।" [तत्त्वदीपिका वर्ष ३ अंक ४]

सामान्य से सामान्य पाठक इस बात को समझ सकता है कि इस मन्त्र में 'रामे' पद के अतिरिक्त कोई ध्वनि ऐसी नहीं है, जो रामकथा के किसी पात्र से मिलती हो। नाम तो इस मन्त्र में न राम का है और न अन्य किसी पात्र का। बस 'रामे' पद देखकर उल्टी-सीधी खींचातानी करके एक मनघड़न्त व्याख्या बना डाली और फिर उसमें अपनी ओर से दशरथ और कौसल्या के नाम भी जोड़ दिये! यह हो गयी वेदों में रामकथा!!

इसमें पदपाठ और व्याकरण के अनुसार तो अशुद्धियां हैं ही, साथ ही इसमें जो रामकथा की बात कही है, वह रामायण में कहीं नहीं है। न इसमें कोई कथातत्त्व है, न कोई महत्त्वपूर्ण कथन। न इस कथन की कोई व्यावहारिक उपादेयता है। दशरथ तो स्वयं पहले ही से राम के प्रति अत्यन्त प्रसन्न, आसक्त एवं मोहग्रस्त हैं। सब जग जानता है कि राम के वियोग में ही दशरथ का प्राणान्त

हुआ था। वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्ति पर दशरथ भावविभोर हो उठे थे। ऐसी स्थिति में यह कथन ही निरर्थक है कि "कौसल्या जी, आप दशरथ को राम में आसक्त बना दो या राम के प्रकट होने पर वृद्ध दशरथ को प्रसन्न कर दो।" ऐसी व्यवहार-विरुद्ध बातों की कल्पना की है इन व्याख्याकारों ने!

अब आइये इसके पदपाठ पर दृष्टिपात कर। भाष्यकारों द्वारा स्वीकृत इसका पदपाठ इस प्रकार है—

**"नक्तम् जाता। असि। ओषधे। रामे। कृष्णे असिक्नि। च। इदम्। रजनि। रजय। किलासम्। पलितम्। च। यत्।**

इस पदपाठ से यह जाना जा सकता है कि रामकथा-अन्वेषकों ने किस धृष्टता से पदपाठ को भ्रष्ट किया है। 'नक्तम् जाता असि' इन तीन पदों को मिलाकर 'नक्तंजातास्य' एक पद बना दिया है। पाठभेद करके 'रजय' को 'रञ्जय' बना डाला और 'रामा' 'कृष्णा' स्त्रीलिंग शब्दों के 'रामे' 'कृष्णे' सम्बोधन रूपों को सप्तम्यन्त प्रयोग बना लिया। ऋषियों ने इसी उद्देश्य से पाठों का आविष्कार किया था कि कोई पाठभ्रंशक पाठों को भ्रष्ट न कर सके और कोई अर्थविध्वंसक अर्थों का अनर्थ न कर सके। यदि कोई करे भी तो वह पहचाना जाये। उक्त पदपाठ से पाठभेद, पाठभ्रंश और अनर्थ की स्पष्ट पहचान हो जाती है।

प्रकरण और प्रतिपाद्य विषय पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि पूर्व उद्धृत मन्त्र और सम्पूर्ण सूक्त में कुष्ठ आदि रोगनाशक वनस्पतियों की चर्चा करते हुए रोगनाश की प्रार्थना की गयी है। प्रस्तुत मन्त्र का देवता 'वनस्पति' है। आचार्य सायण ने भी इस मन्त्र में कुष्ठ रोग का वर्णन माना है। उन्होंने 'किलास' का अर्थ कुष्ठरोग और 'पलितम्' का अर्थ श्वेतकुष्ठ किया है। परवर्ती पौराणिकों ने सायण को भी प्रमाणार्ह नहीं माना। यह स्वेच्छाचारिता की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या है? आचार्य सायण ने अथर्ववेद और तैत्तिरीय ब्राह्मण में पूर्व मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार किया है—

**"अथ पञ्चभिर्मन्त्रैः श्वेतकुष्ठरोगं विनाशयति। शरीरं रमणीयं करोति, इति रामा। स्वयं कृष्णवर्णा। श्वैत्यविनाशनेनासितं कृष्णवर्णं तस्मिन् प्रदेशे संपादयतीत्यसिक्नी, तथाविधे हे नीलाख्यौषधे! त्वं नक्तं जाता ऽ सि अत एवान्धकारवन्नीलवर्णा दृश्यसे। हे रजनि! स्वकीयेन वर्णेन रञ्जनक्षमे ओषधे इदं श्वेतं शरीरं रजय, स्वकीय वर्णेन रञ्जितं कुरु। यत् किलासं श्वेतरोगग्रस्तमङ्गं यच्च पलितं रोमादिकं तदिदं रजयेति। अत्र 'हरिद्रा' रजनीति केचित्।"** (तै. ब्रा. २.४.४.१)

अथर्ववेदभाष्य में इनका अर्थ इस प्रकार मिलता है—

**"रामे—व्याधितो जनः अनया ओषध्या रमते इति रामा, भृङ्गराजाख्या ओषधिः। कृष्णे—कृष्णवर्णे, कृष्णवर्णापादिके वा इन्द्रवारुणि। असिक्नि—असितवर्णे, असितवर्णापादिके वा नीलि।"**

अन्य भाष्यकारों ने भी इस मन्त्र का रोगविनाशपरक अर्थ किया है। अगले मन्त्र के पदों द्वारा इस अर्थ की पुष्टि और सरलता से हो जाती है। उसमें कहा है—

**"किलासं च पलितं निरितो नाशया पृषत्"**

(अथर्व. १.२३.२)

अर्थात्—'हे ओषधि! तू कुष्ठरोग, श्वेतकुष्ठ तथा उसके दागों को नष्ट कर दे।'

रामकथा अन्वेषकों ने जो पिछले मन्त्र में शब्दार्थ किया है, उसके अनुसार इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार बनेगा—

"क्रीडाविरक्त और श्वेत बालों वाले दशरथ को यहां से पूरी तरह नष्ट कर दे।"

तो क्या इस मन्त्र का अर्थ उन्हें स्वीकार है? यदि नहीं, तो फिर उन्हें प्रथम मन्त्र का अनर्थ भी नहीं करना चाहिये। छल की बात तो यह है कि

उन्होंने पांच मन्त्रों वाले इस सूक्त से एक मन्त्र उठाकर व्याख्यात कर दिया, शेष छोड़ दिये। यदि शेष मन्त्रों की व्याख्या ये लोग करते तो अपने अनर्थप्रपञ्च में स्वयं फंस जाते !

**वेदों में रामकथा के अन्वेषकों की बचकानी युक्तियां—**

इस धारणा के प्रवर्तक नीलकण्ठ सूरि हैं, जो लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व हुए हैं। इन्होंने इधर-उधर से ऋग्वेद के डेढ़ सौ मंत्रों का 'मंत्र-रामायण' के नाम से संकलन करके उन पर रामकथापरक भाष्य लिखा। इसके पश्चात् १३० मन्त्रों का एक और संकलन 'मन्त्र-भागवत' नाम से किया और उस पर भी कृष्ण-कथात्मक भाष्य लिखा। उसके बाद छुटपुट व्याख्याएं लिखने वाले और इनका समर्थन करने वाले कई व्यक्ति हुए हैं। ये सभी पौराणिक हैं। 'कल्याण' पत्रिका में इसके समर्थन में प्रायः लेख निकलते रहते हैं। इनकी कुछ युक्तियां इस प्रकार हैं—

१. "भगवान् श्री राम और श्री कृष्ण का वर्णन वेदों में है। इस सृष्टि के पहले कल्पों में श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि के जो चरित्र हुए हैं, उनका संकेत सृष्टि के आदि में अवतरित हुए वेदों ने किया है। इसमें प्रमाण है—'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा-पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः।' (ऋ. १०.१९०.३)।"

२. "वेदमन्त्रों में श्रीराम और उनके पूर्वजों का स्पष्ट वर्णन है। जैसे—ऋ. ५.५४.९ में रघु का; ३.५३.९ में सुदास का; अथ. १९.३९.९ में इक्ष्वाकु का। इसी प्रकार रामकथा से सम्बद्ध घटनाओं का भी उल्लेख है, जैसे—अथ. ४.६.१ में दशानन रावण का; ऋ. १०.३.३ में सीताहरण और उसकी अग्नि परीक्षा का; ऋ. १०.९३.१४ में राम के राज्याभिषेक का; ऋ. १.१२६.४ में दशरथ के यज्ञ का; अथ. १०.२.२८-३३ में अयोध्या नगरी का; अथ. ३.१७.४-९ में तथा ऋ ..४५७.६-७ में सीता का वर्णन है।"

**इन युक्तियों का उत्तर और आपत्तियां—**

१. वेदों में रामकथा-अन्वेषकों की पहली युक्ति कितनी बचकानी और निराधार है, इसका ज्ञान सभी पाठकों को सरलता से हो गया होगा। उद्धृत मन्त्र में सूर्य, चन्द्र, द्युलोक पृथिवी और अन्तरिक्ष आदि के यथापूर्व निर्माण का कथन है, मानव-इतिहास या मानव-जीवन का नहीं। यदि यह मान लिया जाये कि सभी मनुष्य पूर्वकल्पवत्, यथाक्रम से यथावत् जन्म लेते हैं और सभी क्रियाएं यथावत् करते हैं तो इससे तो भारतीय दर्शन और स्वयं वेदों की वह व्यवस्था विनष्ट हो जायेगी जिसमें कर्मों के आधार पर पुनर्जन्मों एवं मुक्ति आदि का उल्लेख है। यदि यथावत् पैदा होकर यथावत् क्रियाएं और घटनाएं होनी हैं, तो कर्म करने की तथा अच्छे बुरे कर्म में अन्तर रखने की आवश्यकता ही कहां रह जायेगी ? इस मनघड़न्त व्याख्या पद्धति के आधार पर तो संसार को एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया में आबद्ध मानना पड़ेगा, उसमें कल्प बदलने पर न व्यक्ति बदलेगा, न वस्तु; यहां तक कि मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषि भी वही रहेंगे। कोई नया ऋषि मन्त्रार्थद्रष्टा नहीं बन सकता ! यह भी मानना पड़ेगा कि इस कल्प के रामकथा-अन्वेषक वही कार्य कर रहे हैं, जो उन्होंने पूर्वकल्प में किया था। इस युक्ति में अनवस्था दोष भी आता है। पूर्वकल्प की कोई सीमा या निश्चय नहीं हो सकता कि कौन-से पूर्वकल्प में यह कथा घटित हुई थी।

इन रामकथा-अन्वेषकों ने एक कमी छोड़ दी है। वह यह कि अभी तक इन्होंने अपनी-अपनी जीवन कथा को वेदों में नहीं खोजा है। इनकी तथाकथित शोध पद्धति से तो वह भी सरलता से मिल सकती है, क्योंकि वेदों में 'नील' और 'कण्ठ' दोनों शब्दों का बहुत्र प्रयोग हुआ है। समानार्थक 'नीलग्रीव' का भी कई स्थलों पर प्रयोग है। यदि इन लोगों की ऐसी ही अनर्थकारी दृष्टि वेदों पर बनी रही, और उस पर अंकुश नहीं लगाया गया,

तो वह समय दूर नहीं जब वे स्वयं को मन्त्रार्थ-द्रष्टा ऋषि और वेदवर्णित व्यक्तित्व घोषित करने का दुस्साहस भी करने लगेंगे।

वस्तुतः यह युक्ति, रामकथा-अन्वेषकों ने पौराणिक वेंकटमाधव, सायण आदि वेदभाष्यकारों से ग्रहण की है। इन भाष्यकारों ने वेदमन्त्रों में पठित शुनःशेप, पुरूरवा, उर्वशी, वसिष्ठ आदि नामों को देखकर उनकी इतिहास-परक व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। जब मन्त्रों में पठित प्रथम पुरुषात्मक प्रयोगों की संगति सूक्त पर उल्लिखित ऋषि से वे नहीं लगा सके, तो उन्होंने यह बचकानी युक्ति देकर पीछा छुड़ा लिया कि "यह प्रयोग पूर्वकल्प की अपेक्षा से है। पूर्वकल्प में जो शुनःशेप आदि ऋषि हुए हैं, उनका वर्णन इस कल्प के हम शुनःशेप आदि ऋषि कर रहे हैं।" जबकि वस्तुस्थिति यह है कि पौराणिक भाष्यकारों ने असंगत मन्त्रार्थ-शैली को ग्रहण कर लिया। जब वे उसका निर्वाह नहीं कर सके तो उन्हें उक्त दुर्बल, बचकानी और अविश्वसनीय युक्ति उपस्थित करनी पड़ी। उनके अनुकरण में रामकथा-अन्वेषक भी इस दुर्बल युक्ति के भटकाव में आ गये हैं।

२. दूसरी युक्ति के विषय में लेख के प्रारम्भ में यह कहा जा चुका है कि ये लोग किसी वेद में कहीं, किसी मन्त्र में रामकथा से मिलता-जुलता शब्द देखते हैं, तो वहीं इन्हें रामकथा का आभास होने लगता है। नाम मिल जाने पर अन्य पदों के साथ खींचातानी करके अर्थ निकालने का प्रयास करते हैं। देवता, प्रकरण आदि की ओर ये किंचित्-मात्र भी ध्यान नहीं देते। पूर्व उद्धृत सभी मन्त्र ऐसे हैं, जिनमें नाम के अतिरिक्त उनसे सम्बद्ध कोई बात नहीं है। न उनमें कथातत्त्व है, न रामकथा से सम्बद्ध उल्लेख। जैसे ऋग्० का सीतासूक्त ऋषि वर्णन का सूक्त है, न कि राम पत्नी सीता का इतिहास। वहां सीता का अर्थ 'हल से बनी रेखा' (खूड) है, जनकपुत्री सीता नहीं। वहां स्पष्टतः कृषि सम्बन्धी बातों और वस्तुओं का उल्लेख है, पुनरपि इन व्याख्याकारों ने उन मन्त्रों को रमा-पत्नी सीता के अर्थ में ढीठतापूर्वक घसीटा है। इसी प्रकार अन्य मन्त्र हैं। स्थानाभाव से उनका विवेचन यहां नहीं किया जा सकता।

यहां रामकथा-अन्वेषकों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वेदों को यदि रामकथा का वर्णन अभीष्ट था, तो किसी एक स्थान पर या किसी एक सूक्त में सरल शब्दों में उसका वर्णन क्यों नहीं कर दिया? न आपको इधर-उधर से मन्त्र इकट्ठे करने पड़ते और न व्याख्या करने के लिए इतनी कसरत करनी पड़ती। कथातत्त्व को ढूंढने के लिए इतने अनर्थ न करने पड़ते! अब तो नीलकण्ठ तथा उसके अनुयायियों द्वारा प्रस्तुत 'वेदों में रामकथा' कोई कथा लगती ही नहीं, अपितु 'भानमती का पिटारा' लगता है।

यह भी विस्मय की बात है कि नीलकण्ठ को वह बात सूझी है, जो स्वयं राम और रामकथा-प्रणेता महर्षि वाल्मीकि आदि को भी नहीं सूझ सकी। वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर राम द्वारा वेद-वेदांग पढ़ने का तथा वेदज्ञ होने का उल्लेख है। क्या वे अपनी ही कथा पढ़ते थे? यदि हां, तो उन्होंने कहीं भी नहीं कहा कि मैं अपनी कथा का विद्वान हूं और पूर्वकल्प में भी मैं और मेरे पूर्वज थे। वाल्मीकि ने रामायण लिखी, महर्षि व्यास ने महाभारत में 'रामोपाख्यान' वर्णित किये, किन्तु उन्होंने भी यह बात कहीं नहीं कही कि यह कथा वेदमन्त्रों में भी आती है। जब रामकथा के आदिप्रणेता ऋषि ही इस मान्यता को स्वीकार नहीं करते तो परवर्ती रामकथा-अन्वेषक भ्रान्ति क्यों फैला रहे हैं? क्या वे वाल्मीकि से भी बढ़कर राम के श्रद्धालु और पूर्वकल्पज्ञ पैदा हो गये हैं?

सभी लोग हनुमान को राम का अतिशय श्रद्धालु सेवक मानते हैं। वाल्मीकि ने भी राम के श्रद्धालु सहयोगी के रूप में हनुमान् का चित्रण किया है। रामायण के अनुसार हनुमान् सभी वेदों और वेदांगों का ज्ञाता विद्वान् था। किन्तु उसे भी इस

बात का ज्ञान नहीं हो सका कि उसके श्रद्धेय का वर्णन वेदों में भी है ! नहीं तो वह राम को भी अवश्य बतला देता कि 'वेदों के वर्णन के अनुसार, दशानन रावण ने सीता का हरण किया है।' तब उसे समुद्रलंघन का श्रम नहीं करना पड़ता। राम को वन-वन न भटकना पड़ता। सुग्रीव को अपनी चुनी हुई गुप्तचर सेना चारों दिशाओं में न भेजनी पड़ती। पश्चात्ताप की बात बस इतनी ही रह गयी है कि जब सारी रामकथा घटित हो चुकी, उसके बहुत वर्षों बाद, अतिशय, श्रद्धालु हनुमान् के कलियुगी अवतारों को यह तत्त्व ज्ञान हुआ है कि यह कथा तो पहले से ही वेदों में विद्यमान थी। अच्छा होता, राम और वास्तविक हनुमान् को भी यह तत्त्वज्ञान हो जाता, कम से कम वे सावधान हो जाते और उन्हें इतने कष्ट न उठाने पड़ते !

यह बात हस्तामलकवत् स्पष्ट और प्रतिष्ठित है कि वेद सृष्टि के आदि में प्रकट हुए हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी इस बात को एकमत से स्वीकार करते हैं कि 'ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है।' श्री राम त्रैतायुग में हुए हैं, अतः वेदों में राम की कथा सम्भव नहीं है; किन्तु फिर भी रामकथा-अन्वेषक दुराग्रह पर अड़कर विवेकशून्यता प्रदर्शित कर रहे हैं और अपनी तथा मन्त्रार्थों की हास्यास्पद स्थिति बना रहे हैं।

अन्त में, मैं यही कह सकता हूं कि मन्त्रार्थों की इस रामकथापरक पद्धति पर विस्मय ही प्रकट किया जा सकता है। मैं वर्तमान रामकथा—अन्वेषकों से अनुरोध भी करना चाहूंगा कि अन्धश्रद्धा, दुराग्रह या पूर्वाग्रह के वशीभूत होकर इस प्रकार की अविश्वसनीय कल्पनाओं से बचें। क्योंकि, प्राचीन वैदिक एवं लौकिक संस्कृत वाङ्मय को इस प्रकार की प्रवृत्ति वाले लोगों ने पहले ही ऊलजलूल कल्पनाओं, दैवी प्रसंगों, अवतारों, प्रक्षेपों और चमत्कारों से ऐसा विकृत और अविश्वसनीय बना रखा है कि कोई भी तटस्थ बुद्धिजीवी, विशेषतः वैज्ञानिक युग के व्यक्ति, सैंकड़ों समाधान और स्पष्टीकरण देने के उपरान्त भी उसकी ऐतिहासिकता, महत्ता एवं उपादेयता को स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं होते। ऐसे ही प्रक्षेपों और काल्पनिक प्रसंगों ने रामायण, महाभारत जैसे अपूर्व ऐतिहासिक काव्यों को इस स्थिति में ला खड़ा कर दिया है कि एक बहुत बड़ा वर्ग उन्हें काल्पनिक मानने लगा है। इसमें उतना दोष उनका नहीं है, जितना अतिशय श्रद्धाभिभूत, उन विवेकशून्य पूर्वजों का है, जिन्होंने दूरगामी परिणाम को विचारे बिना जो चाहा मिला दिया, स्वधारणा के अनुरूप जैसा चाहा परिवर्तित कर दिया। राम और कृष्ण को, मर्यादापुरुषोत्तम, महापुरुष या प्रजावत्सल राजा नहीं रहने दिया, सीता को एक पतिव्रता साध्वी नारी नहीं रहने दिया। इन पर भगवान् और देवी-देवता का आवरण लपेटकर इन्हें इहलोक और मानवसमाज से असम्बद्ध कर दिया। क्या ही श्रेयस्कर होता, यदि वे वाल्मीकि और व्यास-वर्णित मानवीय रूप में मानवों के नेता और उच्च पुरुष ही रहते, तो उन पर हम और अधिक गर्व कर पाते; हमारे समाज के लिए यह बात अधिक गौरव की होती। न लोगों को उनके अस्तित्व पर शंका होती, न अविश्वास। ऐतिहासिक रूप में समस्त विश्व उनके तथ्यों को स्वीकार करता और उनके तथा भारत के आगे शीश झुकाता।

अब भी समय है अपनी भूलों को त्याग देने का और अपने पूर्वाग्रहों एवं भ्रान्तधारणाओं को छोड़ देने का। ऐसी धारणाओं से न साहित्य का भला हो सकता है, न व्यक्ति और समाज का, और न प्रतिपाद्य का। अपितु अनास्था, अविश्वसनीयता एवं विवादों में ही वृद्धि होगी। बुद्धिवादी वर्ग ऐसे लेखन को कभी गम्भीरता से नहीं लेगा। युक्तियुक्त और बुद्धिसंगत लेखन ही वर्तमान समाज में प्रतिष्ठित हो सकता है।

**—राजकीय महाविद्यालय**
**झज्जर (रोहतक)**